धर्मराज की शिवभक्ति

एक समय धर्मराज ने बड़ी कठिन तपस्या की। तपस्या में लगे हुए धर्मराज को देखकर ब्रह्मा और इन्द्र आदि सब देवता कैलास पर्वत पर गये। वहाँ भगवान् शङ्कर भगवती उमादेवी के साथ पारिजात वृक्ष की छाया में बैठे थे। उनके पास पहुँचकर ब्रह्माजी ने इस प्रकार स्तवन किया– "नीलकण्ठ! आपके अनन्तरूप हैं, आपको बार–बार नमस्कार है। आपके इस स्वरूप का यथावत् ज्ञान किसी को नहीं है, आप कैवल्य एवं अमृतस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। देवता जिसका अन्त नहीं जानते, उन भगवान् शिव को नमस्कार है, नमस्कार है। वाणी जिनकी प्रशंसा (गुणगान) करने में असमर्थ है, उन चिदात्मा शिव को नमस्कार है। योगी समाधि में निश्चल होकर अपने हृदयकमल के कोष में जिनके ज्योतिर्मय स्वरूप का दर्शन करते हैं, उन श्रीब्रह्म को नमस्कार है। जो काल से परे, कालस्वरूप, स्वेच्छा से पुरुषरूप धारण करनेवाले, त्रिगुणस्वरूप तथा प्रकृतिरूप हैं, उन भगवान् शङ्र को नमस्कार है। प्रभो! आप भक्तजनों पर कृपा करके स्वेच्छा से सगुण रूप धारण करते हैं, आपको नमस्कार है। भगवन्! आपके मन से चन्द्रमा और नेत्रों से सूर्य की उत्पत्ति हुई है। देव! आप ही सब कुछ हैं, आप में ही सबकी स्थिति है। इस लोक में सब प्रकार की स्तुतियों के द्वारा स्तवन करने योग्य आप ही हैं। ईश्वर! आपके द्वारा यह सम्पूर्ण विश्वप्रपञ्च व्याप्त है, आपको पुनः पुनः नमस्कार है।"

इस प्रकार महादेवजी की स्तुति करके ब्रह्मा आदि देवता उनके आगे दण्ड की भाँति पृथ्वी पर गिर पड़े। तब भगवान् शङ्कर ने उनसे कहा–'देवताओं! तुम क्या चाहते हो?'

ब्रह्माजी ने कहा–सबके दुःखों का नाश करनेवाले महादेव! धर्मात्मा धर्मराज ने बड़ी दुःसह तपस्या की है। न जाने वे देवताओं का कौन–सा उत्तम स्थान लेना चाहते हैं, यही सोचकर इन्द्र आदि सब देवता उनकी तपस्या से थर्रा उठे हैं। देवेश! आप उन्हें तपस्या से उठाइये।

महादेवजी बोले–देवताओं! मैं सच कहता हूँ, तुम्हें धर्मराज से कोई भय नहीं है।

यह सुनकर सब देवता उठे और भगवान् शिव की परिक्रमा एवं बारंबार नमस्कार करके अपने–अपने स्थान को चले गये। परंतु इन्द्र को नींद नहीं आयी, उनकी सुख–शान्ति खो गयी। वे मन–ही–मन सोचने लगे, 'मेरे लिये यह बड़ा भारी विघ्न उपस्थित हुआ। धर्मराज ने मेरा इन्द्रपद हड़प लेने के लिये ही यह अत्यन्त दुष्कर तप प्रारम्भ किया है।' ऐसा विचार करते हुए इन्द्र ने देवताओं से कहा–'मैंने बहुत क्लेश उठाकर जिसे प्राप्त किया है, उसी को धर्मराज क्या मुझसे छीन लेना चाहते हैं?' यह सुनकर बृहस्पतिजी बोले–'इनकी तपस्या में विघ्न डालने के लिये वहाँ उर्वशी आदि अप्सराओं को भेजा जाय।' तब इन्द्र ने अप्सराओं से कहा–'तुम सब लोग शीघ्र धर्मारण्य को जाओ और जहाँ धर्मराज दुष्कर तपस्या में संलग्न हैं, वहाँ पहुँचकर उन्हें इस प्रकार लुभाओ, जिससे वे तपस्या से भ्रष्ट हो जायँ।' इन्द्र का यह वचन सुनकर वर्द्धिनी नामक अप्सरा ने कहा–'पाकशासन! मैं देवताओं के कार्य की सिद्धि के लिये अपनी माया तथा रूप के बल से पूरी चेष्टा करूँगी।' ऐसा कहकर

वर्द्धिनी उस स्थान पर गयी, जहाँ धर्मराज तपस्या करते थे। वह अधिकाधिक वस्त्रों और आभूषणों से विभूषित हो मनोहर रूप बनाकर उनके सामने गयी और सबके मन को लुभानेवाला नृत्य करने लगी। उस समय धर्मराज का मन सहसा क्षुब्ध सा हो उठा।

वर्द्धिनी ने धर्मराज से पूछा–प्रभो! समस्त चराचर जगत् धर्म में ही स्थित है। वही साक्षात् धर्मरूप होकर आप यह दुष्कर तप क्यों कर रहे हैं?

यमराज ने कहा–भामिनि! मैं भगवान् महेश्वर के स्वरूप का दर्शन करना चाहता हूँ। इसीलिये कठिन तपस्या कर रहा हूँ।

वर्द्धिनी बोली–धर्म! इस तपस्या के ही कारण इन्द्र आप से भयभीत हो गये हैं। उन्हीं से प्रेरित होकर मैं यहाँ आपकी तपस्या में विघ्न डालने के लिये आयी हूँ।

वर्द्धिनी के इस सत्य भाषण से सूर्यनन्दन यम बहुत सन्तुष्ट हुए। उन्होंने वर्द्धिनी से इस प्रकार कहा–'मैं समस्त पापकर्मा दुष्टात्मा प्राणियों के लिये यमराज हूँ और सभी जितेन्द्रिय मनुष्यों के लिये धर्मस्वरूप हूँ। वही मैं तुम्हें दुर्लभ वर देता हूँ। तुम कोई मनोवाञ्छित वर माँगो।'

वर्द्धिनी बोली–धर्मधारियों में श्रेष्ठ! मुझे लोकों के हित के लिये इन्द्रलोक में स्थिरतापूर्वक निवास प्रदान कीजिये।

यमराज ने कहा–'एवमस्तु'। अब तुम शीघ्रतापूर्वक कोई दूसरा वर और माँगो।

वर्द्धिनी बोली–महामते! इस महाक्षेत्र में इसी स्थान पर मेरे नाम से प्रसिद्ध तीर्थ हो, जो सब पापों का नाश करनेवाला हो। उसमें किया हुआ दान, होम, तप और स्वाध्याय अक्षय हो।

'तथास्तु' कहकर भगवान् धर्मराज चुप हो गये। तब वर्द्धिनी ने उनकी तीन बार परिक्रमा करके मस्तक नवाकर स्वर्गलोक को प्रस्थान किया। वहाँ जाकर वह देवराज इन्द्र से इस प्रकार बोली–'देवेश! आप सूर्यनन्दन यम से भय न कीजिये। वे यश के लिये तपस्या कर रहे हैं' इतना कहकर वह इन्द्र को प्रणाम करके अपने स्थान को चली गयी। तदनन्तर धर्मराज विधिपूर्वक तपस्या में स्थित हो गये। उनकी घोर तपस्या देखकर देवताओं की प्रार्थना से भगवान् शङ्कर वृषभ पर आरूढ़ हो अस्त्र–शस्त्र एवं सुन्दर कवच धारण करके उस स्थान को गये, जहाँ धर्मराज तपस्या में स्थित थे। वहाँ पहुँचकर महादेवजी बोले–'धर्म! तुम्हारी इस तपस्या से मेरा चित्त बहुत सन्तुष्ट है। तुम कोई वर माँगो, वर माँगो, वर माँगो।'

इस प्रकार सम्भाषण करते हुए भगवान् महेश्वर को देखकर धर्मराज उठकर खड़े हो गये और दोनों हाथ जोड़कर शुद्ध वचनों द्वारा उन्होंने लोकनाथ शिव का इस प्रकार स्तवन किया–'भगवन्! आप सब पर शासन करनेवाले ईश्वर हैं, आपको नमस्कार है। योगरूपी आप परमेश्वर को नमस्कार है। नीलकण्ठ! आपका स्वरूप तेजोमय है, आपको नमस्कार है, नमस्कार है। ध्यान करनेवाले मनुष्य आपके स्वरूप का जिस प्रकार चिन्तन करते हैं, उसके अनुरूप ही विग्रह धारण करके आप प्रकट होते

हैं, आपको नमस्कार है। केवल भक्तिभाव से प्राप्त होनेवाले आप प्रभु को नमस्कार है। ब्रह्माजी के रूप में आपको नमस्कार है। विष्णुरूपधारी प्रभो! आपको नमस्कार है। आप ही स्थूल और सूक्ष्म जगत् हैं, आपको नमस्कार है। अणुरूपधारी आपको नमस्कार है। कामरूप में प्रकट हुए अथवा इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। आप ही सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। आप नित्य, सौम्य, मृड (सुखस्वरूप) एवं श्रीहरि हैं, आपको बारंबार नमस्कार है। आप ही सब ओर से तपानेवाले सूर्य तथा शीतल किरणोंवाले चन्द्रमा हैं, आपको नमस्कार है, नमस्कार है। सृष्टिस्वरूप! आपको नमस्कार है। लोकपाल! आपको नमस्कार है। आप रुद्र, भीम एवं शान्तस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। आपके रूप अनन्त हैं, आप सम्पूर्ण विश्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। चन्द्रशेखर! आपके सब अङ्गों में भस्म लगा हुआ है, आपको नमस्कार है, नमस्कार है। आपके पाँच मुख एवं तीन नेत्र हैं, आपको बार-बार नमस्कार है। सर्प आपके आभूषण हैं तथा आप दिशाओं को ही वस्त्र के रूप में धारण करते हैं, आप अन्धकासुर का विनाश करनेवाले और दक्ष के पाप को हर लेनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। त्रिपुरारे! आपने कामदेव को भस्म किया है, आपको नमस्कार है। मेरे द्वारा कहे हुए इन चालीस नामों का जो पाठ करे और पवित्र होकर तीनों काल इसको पढ़े अथवा सुने, वह सब पापों से छूटकर कैलासधाम को जाय।'

इस प्रकार धर्मराज ने प्रणाम करके जब बड़ी भक्ति से भगवान् शिव का स्तवन किया, तब शिवाजी ने कहा-'महाभाग! तुम्हारे मन में जो कोई अभिलाषा हो। उसके अनुसार कोई वर माँगो।'

यमराज ने कहा-देव! शङ्कर! यदि मुझे आप मनोवाञ्छित वर देते हैं तो इस महाक्षेत्र में आप मेरे नाम से प्रसिद्ध होकर निवास कीजिये। यह स्थान धर्मारण्य के नाम से तीनों लोकों में प्रसिद्धि प्राप्त करे।

महादेवजी बोले-धर्मराज! यह स्थान प्रत्येक युग में सदा धर्मारण्य के नाम से विख्यात होगा। तुम्हारे मन में और भी कोई इच्छा हो तो बताओ, उसे भी पूर्ण करूँगा।

धर्मराज ने कहा-भगवन्! दो योजन विस्तारवाला यह उत्तम स्थान मेरे नाम से प्रसिद्ध तीर्थ हो। यह समस्त देहधारियों के लिये पावन एवं सनातन मोक्षस्थान हो।

महादेवजी बोले-'एवमस्तु' एक अंश से इस तीर्थ में मेरी भी स्थिति होगी। तुम्हारे इस निर्मल स्थान को मैं कभी नहीं छोड़ूँगा। यहाँ मेरे नाम से विश्वेश्वर नामक महालिङ्ग प्रकट होगा।

ऐसा कहकर महादेवजी वहीं अन्तर्धान हो गये। तत्पश्चात् वहाँ एक अद्भुत लिङ्ग प्रकट हुआ। धर्म के द्वारा स्थापित किया हुआ वह लिङ्ग धर्मेश्वर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसका स्मरण और पूजन करने से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है। धर्मराज ने वहीं पर एक धर्मवापी का निर्माण किया, जो बड़ी मनोरम है। उसमें स्नान और जलपान करके मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है।

धर्मराज की तपस्या-संबंधी एक दूसरी कथा का उल्लेख इस प्रकार है। पूर्वकाल में एक बार

धर्मराज दक्षिण समुद्र के तट पर महादेवजी का चिन्तन करते हुए घोर तपस्या की थी फलस्वरूप उनकी तपस्या से प्रसन्न हो भगवान् महेश्वर प्रकट हुए। तब धर्मराज ने उनकी स्तुति इस प्रकार की–'मैं जगत् के स्वामी ॐकारस्वरूप ईश्वर को नमस्कार करता हूँ। समस्त देवता जिनके स्वरूप हैं, जो आदि, मध्य और अन्त से रहित हैं, जिनके नेत्र भयंकर हैं, उन विश्वरूप ऊर्ध्वरेता भगवान् शंकर को मैं नमस्कार करता हूँ। जो सम्पूर्ण जगत् के आधार, अनन्त, अजन्मा और अविनाशी हैं, योगीश्वर जिनको सदा प्रणाम करते हैं, उन पुष्टिवर्द्धक भगवान् शिव को मैं प्रणाम करता हूँ। जो समस्त लोकों के स्वामी हैं, उन भगवान् महादेव को नमस्कार है। जिनके कण्ठ में नील चिन्ह है, जो समस्त पशुओं (जीवों) के पालन करनेवाले पति हैं, उन भगवान् महेश्वर को बार-बार नमस्कार है। समस्त पापों का नाश करनेवाले भगवान् शंकर को नमस्कार है। समस्त कामनाओं की वर्षा करनेवाले महेश्वर को नमस्कार है। रुद्रदेव को नमस्कार है। सर्पों को प्रश्रय देनेवाले शिव को नमस्कार है। उत्कृष्ट चित्तवाले प्रचेता (वरुण) रूप शम्भु को नमस्कार है। हाथों में पिनाक एवं त्रिशूल धारण करनेवाले आपको बार-बार नमस्कार है। चैतन्यरूप शिव को नमस्कार है। पुष्टिपालक महेश्वर को नमस्कार है। समस्त क्षेत्रों (शरीरों) के स्वामी भगवान् पंचानन शिव को नमस्कार है।'

इस प्रकार स्तुति करने पर भगवान् शंकर ने कहा–'महामते धर्म! मैं तुम्हारे इस स्तोत्र से बहुत प्रसन्न हूँ, तुम मुझसे वर माँगो।

धर्म ने कहा–पार्वतीपते! मैं सदा आपका वाहन होऊँ।

शिवजी ने कहा–धर्म! तुम सदैव मनुष्यों से पूजित हो, तुम मेरे वाहन बनो। तुम्हारा सेवन करनेवाले मनुष्यों की मुझमें सदैव भक्ति बनी रहेगी और तुमने दक्षिण समुद्र के तट पर जो तीर्थ बनाया है, वह धर्मपुष्करिणी के नाम से प्रसिद्ध होगा।

इस प्रकार उस धर्मतीर्थ के लिये वर देकर भगवान् शंकर वृषभरूपधारी धर्म पर आरुढ़ हो कैलास पर्वत पर चले गये।

धर्मराज की तपस्या संबंधी एक अन्य कथा में कहा गया है कि एक बार विवस्वान् के पुत्र परम संयमी यमराज ने भगवान् शिव के दर्शन की तीव्र इच्छा से तपस्या करते हुए एक दिव्य चतुर्युगी* व्यतीत कर दी। उनके तप से सन्तुष्ट होकर भगवान् शिव वर देने के लिये प्रस्तुत हुए। उन्हें देखकर यमराज ने प्रणाम कर स्तुति करनी आरंभ कर दी। स्तुति के उपरान्त यमराज ने 'ॐ नमः शिवाय' इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए भगवान् शंकर को सहस्त्रों बार प्रणाम किया। तदनन्तर परमेश्वर शिव ने यमराज को नमस्कार से रोककर इस प्रकार वरदान दिया–'सूर्यनन्दन! तुम (कर्म और स्वरूप से तो धर्म हो ही) नाम से भी 'धर्मराज' हो जाओ आज से तुम समस्त चराचर प्राणियों के धर्माधर्म के निर्णय

* पृथ्वी पर सत्ययुग से कलियुगतक के समय को मानवीय चतुर्युगी कहते हैं। मानवीय चतुर्युगी को 365 से गुणा करने पर एक दिव्य चतुर्युगी होता है। अर्थात् 365 मानवीय चतुर्युगी = एक दिव्य चतुर्युगी।

में मेरे द्वारा नियुक्त होकर मेरी आज्ञा से सबका शासन करो। तुम दक्षिण दिशा के अधिपति और समस्त जीवों के कर्मों के साक्षी होओ। उत्तम और अधम मनुष्य तुम्हारे दिखाये हुए मार्ग से ही कर्मानुसार गति प्राप्त करें। धर्म! मुझसे भक्ति रखते हुए तुमने जो यहाँ मेरे लिंगविग्रह की आराधना की है, उसके दर्शन, स्पर्श और पूजन से मनुष्यों को शीघ्र सिद्धि प्राप्त होगी। यह लिंग धर्मेश्वर नाम से जाना जायगा तथा यह धर्मतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध होगा। इस धर्मेश्वर पीठ का मैं कभी भी त्याग नहीं करूँगा। यह धर्मेश्वर लिंग काशी में स्थित है।

उपर्युक्त कथाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि यमराज को धर्मराज की उपाधि, लोगों को शुभाशुभ कर्मों के अनुसार फल देने का अधिकार तथा भगवान् शिव का वाहन बनने का गौरव भगवान् शिव की उपासना के फलस्वरूप ही प्राप्त हुआ।

(उपर्युक्त कथाएँ गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा संवत् 2050 में प्रकाशित कल्याण के संक्षिप्त स्कंदपुराणांक के ब्राह्मखण्ड, धर्मारण्य-माहात्म्य के पृ. 456-459; ब्राह्मखण्ड-सेतु-माहात्म्य के पृ. 410-411; तथा काशीखण्ड उत्तरार्ध के पृ. 678-680 पर आधारित हैं।)

❀❀❀❀❀❀

दशांग धूप

चमेली का फूल, इलायची, गुग्गुल, हर्रे, कूट, राल, गुड़, छडछरीला और वज्रनखी नामक गन्ध द्रव्य-इनके साथ धूप(काला अगरु) का संयोग होने से इन सबको दशांगधूप कहते हैं।

जातिपुष्पमथैला च गुग्गुलश्च हरीतकी।
कूटः सर्जरसश्चैव गुडः शैलाच्छडस्था।
नखयुक्तानि चैतानि दशाङ्गो धूप उच्यते।।

(स्कन्द पु. वैष्णव. मार्गशीर्ष माहात्म्य 8/27)